प्रथम अध्याय

जगदीशचंद्र माथुर : व्यक्तित्व एवं कृतित्व।

जगदीशचंद्र माथुर व्यक्तित्व एवं कृतित्व

विषय प्रवेश -

किसी भी साहित्यकार की कृतियों को देखते समय उसका व्यक्तित्व देखना महत्त्वपूर्ण होता है। क्योंकि साहित्यकार की साहित्यिक कृतियों पर उसके व्यक्तित्व की छाप दिखाई देती है।

साहित्यकार का व्यक्तित्व परिवेश के अनुसार बनता है। उसी तरह उसका साहित्य भी बनता है। जिस परिवेश में साहित्यकार पलता है, साहित्यिक कृतियों पर उस परिवेश की अमिट छाप पड़ती है। जगदीशचंद्र माथुर के नाटक साहित्य की ओर देखते वक्त हम यह महसूस करते हैं कि उस वक्त के परिवेश का माथुर के नाटकों पर प्रभाव है। दो विश्वयुद्धों के बीच माथुर पले हैं। इसलिए उनके नाटकों में युद्धों के प्रसंग दिखाई देते हैं।

साहित्य समाज का दर्पण माना जाता है। लेकिन दर्पण में प्रतिबिंब तब उभरता है, जब माध्यम ठोस हो। उसी तरह समाज की अभिव्यक्ति साहित्य में तब उभरती है, जब माध्यम समर्थ हो। सामाजिक अनुभूति परिवेश के अनुसार हर मनुष्य में दिखाई देती है, लेकिन साहित्यकार ही उसे चित्रित करता है।

व्यक्तित्व -

जगदीशचंद्र माथुर के व्यक्तित्व का निम्न लिखित मुद्दों के आधार पर विचार किया है -

पारिवारिक पृष्ठभूमि -

जगदीशचंद्र माथुर मध्यवर्गीय परिवार में पलने के कारण मध्यवर्गीय लोगों की समस्याएँ, समाज में ऐसे लोगों का स्थान तथा समाज से उसकी अपेक्षाएँ और समाज के लिए उसका योगदान इन सारी बातों को माथुर ने भोगा तथा परखा भी है। और उन सारी बातों को उन्होंने अपने साहित्य में चित्रित किया है।

एक ललित निबंध में उन्होंने लिखा है - ''सौंदर्य मेरी साधना है, किंतु पुरूषार्थ मेरी सौंदर्य साधना से भी परे लोकोत्तर सत्य है।''[1]

इन शब्दों में उनका व्यक्तित्व स्पष्ट होता है। सौंदर्य साधना और पुरूषार्थ भारत की मिट्टी की देन है। लेखक गोविंद चातक ने माथुर के बारे में लिखा है - "लोकजीवन और संस्कृति के प्रति अपने इस मध्यवर्गीय अथाह प्रेम को उन्होंने जीवन के अनुभवों तथा भोगे हुए यथार्थ से सींचा है।"[2]

मध्यवर्गीय परिवार की सारी विड़बंनाएँ, व्यथाएँ, समस्याएँ, खुशियाँ इनके साहित्य में झलकती हैं।

माता-पिता -

माथुर के पिता लक्ष्मीनारायण माथुर स्कूल में अध्यापक की नौकरी करते थे। वे कर्तव्यनिष्ठ, उदार, कर्मठ तथा उच्च विचारों के वाहक भी थे। उनमें समानता तथा एकात्मकता की भावना और राष्ट्रीयता कूट-कूट कर भरी हुई थी। स्कूल के सहभोजन में उन्होंने मेहतर के साथ खाना खाकर सामान्य उपेक्षित लोगों के प्रति मनुष्य की दृष्टि बदलने का प्रयास किया।

पिता की कर्मठता का जगदीशचंद्र माथुर पर गहरा असर पड़ा। उनकी देख-रेख में उन्होंने अपने मन की खिड़कियों को खोला। उन्हीं से उन्होंने अपने जीवन की कला सीखी। अपने जीवन की वह कहानी उन्होंने अपने पिता के द्वारा पढ़ी ज्यो पाठ्यक्रम में नहीं थी।

माथुर जी की माता एक आदर्श भारतीय नारी थी। वह एक आदर्श माता तथा आदर्श पत्नी भी थी। उन्होंने अपनी सभी जिम्मेदारियों को अच्छी तरह से संभाला।

जन्म तथा बचपन -

जगदीशचंद्र माथुर का जन्म 16 जुलाई, 1917 में उत्तर प्रदेश खुर्जा के पास एक गाँव में हुआ। एक छोटे-से कस्बे में जन्म तथा बचपन बीतने के कारण ग्रामीण समस्याओं को उन्होंने बहुत नजदीक से देखा। ग्रामीण जीवन के निकट संपर्क में आने के कारण उनको प्रकृति का असीम सौंदर्य, ग्रामीण लोगों का सादगी भरा जीवन, उनकी सरलता, लोक जीवन तथा हमारी संस्कृति की अक्षय निधि के प्रत्यक्ष दर्शन हुए।

संस्कार और शिक्षा-दीक्षा -

जगदीशचंद्र माथुर का जन्म एक मध्यवर्गीय परिवार में होने के कारण मध्यवर्गीय संस्सकार उन पर हुए। उनका बचपन ग्रामीण परिवेश में बीत गया। इसलिए उन पर ग्रामीण संस्कार भी

जम गए थे। उनके बचपन का काल परतंत्रता का था। हमारे देश पर अंग्रेजों का शासन था। उस वक्त भारत वर्ष में आजादी की घोषणाएँ गूँज रही थी, इसी समय जगदीश चंद्र माथुर स्कूली छात्र थे और इन घटनाओं का इनके जीवन पर गहरा असर पड़ा।

सन् 1933 में क्रिश्चियन कालेज इलाहाबाद में उन्होंने प्रवेश लिया और अपनी कालेज की पढ़ाई पूरी की। सन् 1936 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम्. ए. प्रथम श्रेणी में वे पास हुए। यह समय भारत वर्ष के इतिहास का नव जागरण का काल था। और हिंदी साहित्य में स्वच्छंदतावाद का जन्म हो चुका था। जब जगदीशचंद्र माथुर इलाहाबाद में पढ़ते थे, तब सामाजिक स्तर पर देश का वातावरण रोमानी भावनाओं से परिपूर्ण था। और साहित्य के स्तर पर छायावाद का बोल-बाला था।

जगदीशचंद्र माथुर ने मध्यवर्गीय समस्याओं को देखा था, स्वयं उन्होंने उन समस्याओं को भोगा तथा परखा भी था। उक्त घटनाओं का गहरा असर उसके जीवन पर पड़ा और इन सभी बातों को उन्होंने अपने साहित्य के माध्यम से समाज के सामने लाने का प्रयास किया।

माथुर का जन्म प्रथम विश्वयुद्ध (1914-1919) दरमियान हुआ, तथा उनका बचपन और कैशौर्य बीतते ही दूसरा विश्वयुद्ध (1939-1945) छेड़ा गया। इन दो विश्वयुद्धों का माथुर के जीवन पर प्रभाव पड़ा। इसी के कारण उनके तीनों नाटकों में युद्ध के प्रसंग दिखाई दते हैं। उनके अनेक एकांकीयों का विषय भी प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में युद्ध के साथ संबंध रखनेवाला दिखाई देता है।

माथुर जी जिस वक्त (1941) सरकारी नौकरी में आए थे उन दिनों भारत वर्ष में अंग्रेजी शासन था। अंग्रेजों की शोषण और दमन नीति के कारण हिंदी जनता त्रस्त हो गई थी। अंग्रेजों के आतंक की कहानी उन्होंने अपनी आँखों से देखी और उनका मन अपने देश तथा देशवासीयों की पीड़ा को महसूस करने लगा। उन्होंने उस वक्त सोई हुई, अंधकार में भटकनेवाली हिंदी जनता को सचेत किया। उन्हें जागृत करके अंग्रेजों के खिलाफ बगावत का झंड़ा हाथ में लेकर खड़ा किया। उनकी कृतियाँ 'भोर का तारा' 'विजय की बेला' तथा 'कोणार्क' में यही बातें देखने को मिलती हैं कि शासन तथा शोषण के विरूद्ध उन्होंने अपने पात्रों के माध्यम से आजादी की लड़ाई में अपना सहयोग दिया है।

घरेलू वातावरण -

जगदीशचंद्र माथुर का परिवार एक देहाती परिवार था। उनके पिता कर्तव्यनिष्ठ, उदार, राष्ट्रीय विचारों के वाहक थे। कर्मठता उनके रग-रग में भरी हुई थी। उनकी माता मध्यवर्गीय परिवार

की एक आदर्श भारतीय नारी थी। उनका घरेलू वातावरण मध्यवर्गीय परिवार का वातावरण था। यह समय परतंत्रता का था। एक ओर देश में आजादी का आंदोलन चल रहा था। आजादी के नारों का शोर भारत वर्ष के लोगों में दीवानगी भर रहा था।

जगदीशचंद्र माथुर के पिता राष्ट्रीय विचारों के वाहक होने के कारण उनके भी घर में आजादी को लेकर चर्चाएँ तथा बहसे होती थी। उस वक्त का हर आदमी आजादी की लड़ाई में कूदने के लिए तैयार था। और इन सभी घटनाओं का असर लेखक के मन पर हो रहा था।

जगदीशचंद्र माथुर के पिताजी ने स्कूल में हो रहे 'शाहजांह' नाटक को रोक दिया था। इस घटना का भी प्रभाव लेखक के मन पर हुआ। इन सभी घटनाओं को उन्होंने कहीं-ना-कहीं प्रतीक के रूप में अपने साहित्य में चित्रित किया है।

कला की रूचि -

जब जगदीशचंद्र माथुर इलाहाबाद विश्वविद्यालय में पढ़ते थे तो सामाजिक स्तर पर देश का वातावरण राष्ट्रीयता और रोमानी भावनाओं से परिपूर्ण था। देश में आजादी का आंदोलन चल रहा था। हिंदी साहित्य में छायावाद का बोल-बाला था। छायावादी युग के अनेक कवियों ने राष्ट्रीयता को काव्य का विषय बनाया था।

छायावादी युग के कवि सुमित्रानंदन पंत की साहित्यिक रचनाओं को वे पढ़ते थे, उनकी साहित्यिक कृतियों का उनके जीवन पर प्रभाव पड़ा। और वे पढ़ते-पढ़ते खुद लिखने लगे। उन्हीं के शब्दों में - "....वे छायावाद की साक्षात् मूर्ति सुमित्रानंदन पंत से अभिभूत हुए और फिर उन स्वप्नों के विधाता बने मेरे लिए पंतजी।"[3]

इस प्रकार जगदीशचंद्र माथुर ने सुमित्रानंदन पंतजी से प्रेरणा लेकर अपना साहित्य लिखना शुरू किया। जब वे बीमार थे उन दिनों में उन्होंने उनकी अनेक रचनाओं को पढ़ा और साथ ही अपने अकेलेपन को दूर करने के लिए अपने तकिए के नीचे कागज और पेन्सिल रखकर छुपकर वे कुछ तुकबंदिया लिखने लगे।

कृतित्व -

जगदीशचंद्र माथुर का कृतित्व देखते वक्त उसे हम दो भागों में बाँट सकते हैं - 1. कार्य

क्षेत्र 2. साहित्य क्षेत्र। माथुर का साहित्य क्षेत्र जितना विशाल है, उसी तरह उनका कार्यक्षेत्र भी बहुत बड़ा है।

कार्यक्षेत्र -

जगदीशचंद्र माथुर नौकरी करते वक्त किसी एक जगह पर ज्यादह दिनों तक नहीं टिक सके। आजाद पंछी की तरह वे एक जगह से दूसरी जगह पर निरंतर घूमते रहे। सन् 1936 में प्रयाग विश्वविद्यालय से एम्. ए. की उपाधि हासिल करने के पश्चात् सन् 1941 में उन्होंने सरकारी नौकरी पकड़ ली। वे इंडियन सिविल सर्व्हिस के अंतर्गत बिहार में शिक्षा-सचिव के रूप में नियुक्त किए गए। लेकिन उस स्थान पर भी उनका मन नहीं टिका। चार बरस के बाद सन् 1945 से 1946 तक वे 'सबडिविजनल ऑफिसर' बने। सन् 1949 में वे पटना सेक्रेटरियट में पदाधिकारी के रूप में रहे। उन्होंने सन् 1941 में ही आई. सी. एस्. की परीक्षा पास की थी। सन् 1951 से 1955 तक वे पटना में बिहार सरकार के शिक्षा-सचिव के रूप में कार्यरत रहे। सन् 1953 से 1959 तक संगीत नाटक अकादमी के वे सदस्य बने। सन् 1955 से 1962 तक नई दिल्ली में आकाशवाणी के महानिर्देशक पद पर वे नियुक्त किए गए। उस वक्त उनका संबंध मराठी के लब्ध प्रतिष्ठित नाटककार मामा वरेरकर के साथ आया। मामा वरेरकर के अनेक गुणों का प्रभाव उनके मन पर पड़ा। जिसका चित्रण उन्होंने अपने 'सदाबहार साया' संस्मरण में किया है।

अनुसंधान के क्षेत्र में भी उन्हें गहरी रूचि थी। सन् 1963 से 1964 तक हार्वर्ड विश्वविद्याल में वे 'विजिटिंग फैलो' के रूप में अनुसंधान का कार्य करते रहे। सन् 1960 से लेकर 1962 तक 'नॅशनल स्कूल ऑफ ड्रामा' की कार्यकारिणी समिति के अध्यक्ष के रूप में उन्होंने कार्य किया।

सन् 1964 में कुछ दिनों के लिए कृषि मंत्रालय के अतिरिक्त सचिव बने। उस समय उन्होंने कृषि समस्याओं को देखा और उन्हीं समस्याओं को उन्होंने 'पहला राजा' नाटक में चित्रित किया है। सन् 1970 में गृह मंत्रालय में हिंदी सलाहाकार के रूप में निर्वाचित किए गए। इसके बाद सन् 1973 में बैंकाक में प्रतिनियोजित के रूप में कार्यरत रहे। 14 मई, सन् 1978 में 'राम मनोहर लोहिया' अस्पताल दिल्ली में उनका निधन हुआ।

डा. जगदीशचंद्र माथुर की मृत्यु के बाद हिंदी साहित्य को एक ऐसी क्षति पहुँची है जिसकी पूर्ति असंभव है।

साहित्य क्षेत्र -

डा. जगदीशचंद्र माथुर का साहित्यिक जीवन लगभग 12 वर्ष की अल्पायु में सन् 1929 में प्रारंभ हुआ। सन् 1929 में उन्होंने 'बालसखा' के लिए 'मूर्खेश्वर राजा' नामक प्रहसन लिखा था। इसी वर्ष उन्होंने 'लवकुश' नाटक की रचना की। साहित्यिक दृष्टि से यह नाटक महत्त्वहीन था परंतु माथुर का यह प्रथम प्रयास था।

माथुर एक नाटककार, एकांकीकार तथा संस्मरणकार के रूप में हमारे सामने आते हैं। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी।

एकांकी और लघु नाटक -

अ. एकांकी -

जगदीशचंद्र माथुर ने 'मेरी बांसुरी' नामक पहली एकांकी लिखी उनके तीन एकांकी संग्रह प्रकाशित हुए हैं -

i. 'भोर का तारा' -

'भोर का तारा' संग्रह में पाँच एकांकी हैं - 1. भोर का तारा, 2. रीढ़ की हड्डी, 3. कलिंग विजय, 4. मकड़ी का जाला, 5. खंड़हर।

'भोर का तारा' एकांकी का नायक शेखर है। ज्यो एक कवि है और 'भोर का तारा' शीर्षक से महाकाव्य रच रहा है।

'कलिंग विजय' एकांकी का नायक अशोक है और नायिका है रेखा। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि लेकर माथुर ने प्रेम और वैराग्य के द्वंद्व का चित्रण किया है।

'रीढ़ की हड्डी', 'मकड़ी का जाला', 'खंड़हर' तीनों यथार्थवादी और सामाजिक एकांकी हैं।

ii. 'ओ मेरे सपने' -

प्रस्तुत एकांकी संग्रह में पाँच एकांकी संकलित हैं - 1. घोंसले, 2. खिडकी की राह, 3. कबूतरखाना, 4. भाषण, 5. ओ मेरे सपने।

उपर्युक्त सभी एकांकी यथार्थवादी और सामाजिक एकांकी हैं। इन सभी एकांकियों में

समाज का प्रतिबिंब दिखाई देता है। मध्य वर्गीय परिवार में जीवन जीनेवाले आदमी की सभी समस्याएँ इन एकांकीयों में देखने को मिलती हैं।

iii. 'मेरे श्रेष्ठ रंग एकांकी' -

मार्थुर का यह तीसरा एकांकी संग्रह है लेकिन सबसे पहले प्रकाशित हुआ है। इसमें कुल मिलाकर आठ एकांकी संकलित हैं - 1. बंदी, 2. घोंसले, 3. खंडहर, 4. ओ मेरे सपने, 5. भोर का तारा, 6. भाषण, 7. विजय की बेला, 8. रीढ़ की हड्डी

प्रस्तुत एकांकी संग्रह में दो ही एकांकी नए हैं - 1. विजय की बेला, 2. बंदी।

'विजय की बेला' में बिहार के शूरवीर' कुंवरसिंह के जीवन की घटना का प्रसंग लिया है। 'बंदी' एकांकी द्वारा एकांकीकार ने गाँव और शहर के संस्कार में कितना मौलिक अंतर होता है यह स्पष्ट किया है।

ब. लघुनाटक -

जगदीशचंद्र माथुर एक प्रयोगधर्मी नाटककार है। उन्होंने 1. कुंवरसिंह की टेक, 2. गगन संवारी ये दो लघुनाटक लिखे हैं।

i. कुंवरसिंह की टेक -

यह एक ऐतिहासिक लघुनाटक है जिसमें राजपूती जीवन प्रस्तुत किया है। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के महान योद्धा राजपूत कुल शिरोमणि प्रस्तुत नाटक के नायक है। कुवरसिंह जंयती के अवसर पर इस नाटक का प्रदर्शन और प्रकाशन हुआ।

ii. गगन संवारी -

यह कठपुतली नाटक है। इसमें एक मामूली जुलाहे के माध्यम से राष्ट्रीय एकता का चित्र खींचा है। इसमें विभिन्न भाषाओं का प्रयोग किया है।

नाटक साहित्य -

'कोणार्क', 'शारदीया' और 'पहला राजा' ये माथुर के मौलिक नाटक हैं। इन तीनों नाटकों में पौराणिकता तथा ऐतिह्यसिकता दिखाई देती है।

रामचरित मानस पर अधारित लिला नाट्य 'दशरथनंदन' और 'रघुकूल रीति' उनके अंतिम दिनों की नाट्य रचनाएँ हैं।

i. कोणार्क -

नरसिंहदेव की इच्छानुसार बारह सौ शिल्पी मंदिर निर्माण में लगे हुए हैं। कलश स्थापित न होने के कारण प्रधान शिल्पी विशु चिंतित है। उसी समय धर्मपद का आगमन होता है और उसी वक्त तय किया जाता है कि कलश स्थापन पुरस्कार स्वरूप धर्मपद को एक दिन का महाशिल्पी का पद दिया जाएगा। जब महाराज आते हैं तब धर्मपद शिल्पियों पर उनके नाम पर हुए अत्याचारों की शिष्ट शब्दावली में कैफियत तलब करता है। उसी समय नरसिंहदेव की अनभिज्ञता और निर्दोषिता सिद्ध होती है और अत्याचारी चालुक्य का भंड़ा फूट जाता है। चालुक्य मंदिर को चारों ओर से घेर कर आक्रमण करता है तब धर्मपद श्रमिकों का संगठन करके उसका मुकाबला करता है। महाराज नरसिंहदेव पुरी की ओर चले जाते हैं। धर्मपद युद्ध में घाव के कारण मूर्च्छित हो जाता है। उसी समय उसके गले में हाथी दांत का कंकन विशु देखता है तो उसे सारीका से किया हुआ प्यार तथा अपना पलायन याद आता है। अब कोणार्क मंदिर चालुक्य के हाथ में जानेवाला ही था तब विशु अपने प्रतिशोध को पूरा करने के लिए मंदिर को ध्वस्त करता है। यहाँ नाटक की कथावस्तु समाप्त होती है।

ii. शारदीया -

माथुर का दूसरा नाटक शारदीया भी ऐतिहासिक नाटक है। नाटक के दो पात्र नरसिंहराव और बायजाबाई बचपन के प्रेमी हैं। दो वर्ष पहले नरसिंहराव धन कमाने के लिए चला गया था। लौटने के बाद उसे दिखाई देता है कि पूरा कागल गाँव बदल चुका है। सखाराम घाटगे की किलेदारी चली जाने के कारण पूना में नाना फडणवीस के यहाँ नौकरी कर रहे हैं। दो वर्ष के बाद जब नरसिंह बायजाबाई को वचन की याद दिलाता है। उसी समय धन के साथ वह यश भी कमाना चाहता है। बायजाबाई अपनी उँगली चीरकर नरसिंह को विजय-तिलक लगाती है। लौटने के बाद ही दोनों का विवाह होगा यह भी तय होता है। नरसिंहराव और बायजाबाई के प्रेम को कई नाटकीय मोड़ों से होकर गुजरना था। तभी सर्जेराव घाटगे, बायजाबाई और नरसिंह राव के प्रेम को नकार देता है। तथा नरसिंहराव के प्रति अपनी नफरत भी प्रकट करता है।

प्रतिशोध की आग में सर्जेराव घाटगे जल रहा है वह इस समय कूटनीति अपनाता है और नरसिंहराव को कूटनीति का शिकार बनाता है। सिंधिया महाराज को बुरी आदते लगवाता है। नरसिंहराव को राष्ट्रद्रोह के अपराध में बंदी बनाया जाता है। इधर बायजा नरसिंह की याद में तड़प रही है। वह भागना चाहती है लेकिन पकड़ी भी जाती है, उस वक्त सर्जेराव उसे बताता है कि नरसिंह मर चुका है। इधर नरसिंह किले में बंदी जीवन का एकाकीपन दूर करने के लिए पंचतोलिया साड़ी बुनता है।

सर्जेराव सिंधिया महाराज को शराब अफीम की बुरी आदते लगवाता है। शराब के नशे में महाराज की ओर से दीवान पद के आज्ञा पत्र पर घाटगे दस्तखत करवा लेता है और महाराज और बायजाबाई की शादी तय होती है। बीच में महाराज नरसिंह जीवित है यह बात सर्जेराव को मालूम होने नहीं देते। शादी के बाद बायजा को नरसिंह के पास भेजा जाता है दोनों को मालूम नहीं है कि बंदी कौन और महारानी कौन है। भेट के दरमियान घाटगे का सारा षड्यंत्र बायजा को मालूम होता है। वह नरसिंह को इससे छुड़ाना चाहती है, उसी समय नरसिंह उसे पंचतोलिया साड़ी भेंट देता है। दर्द से टूटी बिखरी बायजा आखिरी बार नरसिंह को साथ चलने के लिए कहती है मगर नरसिंह उसी कालकोठरी को अपना जीवन मानकर वही रहता है।

iii. पहला राजा -

'पहला राजा' नाटक समकालीनता का प्रतीकाख्यान है। राजा वेन के शरीर को उसी की माँ सुनीथा ने विशेष लेप देकर अठ्ठाईस दिनों तक उसका शरीर सुरक्षित रखा है। वह जीवित नहीं होता इसलिए कुशा की रस्सी को तलहटी में रोप देने का आदेश सुनीथा अपनी दासी को देती है। मुनियों के साथ सुनीथा की बातचीत होती है और वेन के शरीर का मंथन किया जाता है। मंथन द्वारा कवष जंघापुत्र और पृथु भुजापुत्र घोषित किए जाते हैं।

पृथु पहला राजा घोषित किया जाता है उसे शपथें दी जाती हैं। अंग के आश्रम में पृथु और कवष की एक मित्र उर्वी थी जो दोनों से समान प्यार करती थी। पृथु कवष का साथ छोड़ देता है। अब पृथु अर्चना के प्रेम पाश में बंध गया है। इसी समय चारों ओर अकाल पड़ जाता है। उधर कवष और उर्वी के अनुष्ठान के कारण धरती का रस सूख जाता है। पृथु उन्हें मारने के लिए निकलता है। लेकिन सपने में उसे अकाल का कारण समझता है।

पृथु उर्वी और कवष के साथ अकाल पर चर्चा करते हैं - धरती को समतल बनाने की

और बाँध की योजना तय होती है। लेकिन राजा पर कवष और उर्वी का प्रभाव मुनियों को खटकने लगता है। सभी मुनि कूटनीति द्वारा बाँध को पूरा नहीं होने देते। बाढ़ के कारण बाँध बह जाता है साथ ही बाँध की रक्षा के प्रयास में जूझनेवाले उर्वी और कवष भी बह जाते हैं। ऋषीकुल इस बात से संतुष्ट और प्रसन्न होता है। राजा पृथु भी ऋषियों के प्रस्ताव के अनुसार अंत में चलने लगता है।

सन् 1974 में रामचरित मानस पर आधारित लिला नाट्य रूपांतर 'दशरथनंदन' और 'रघुकुल रीति' इन दो नाटकों को माथुर ने अंतिम दिनों की अध्यात्मिक रूझान के अंतर्गत लिखा है। रामलीला की प्राचीन नाट्य शैली का एक प्रयोगात्मक अनुभव 'दशरथनंदन' है। रामचरित मानस के मूल रूप पर श्रद्धा और भक्ति सहित नाटककार ने मौलिकता का भी प्रतिपादन किया है। 'रघुकुल रीति' नाटक 'दशरथनंदन' नाटक की अगली कड़ी है। इसमें राम पिता की आज्ञा मानकर वन की ओर प्रस्थान करते हैं।

अन्य साहित्य -

1. दस तसवीरें (चरित-लेख)
2. जिन्होंने जीना जाना (चरित लेख)
3. बोलते क्षण (आत्मकथन)
4. प्राचीन भाषा नाटक संग्रह (संपादित)

'दस तसवीरें' और 'जिन्होंने जीना जाना' इन दो किताबों में उन्होंने अपने जीवन के साथ संबंध रखनेवाले व्यक्तियों का चरित्रांकन किया है। साथ में इन व्यक्तियों से प्रभावित अपने व्यक्तित्व को भी शब्दांकित किया है।

'दस तसवीरें' में निम्नांकित दस व्यक्तियों का चरित्रांकन किया है -

1. जीवन निर्माता अध्यापक - अमरनाथ झा।
2. मतवाला कलाकार - शिशिर भादुडी।
3. अफसर जो विलक्षण अपवाद था - पुरूषोत्तम मंगेश लाड।
4. आस्थावान अंग्रेज शिक्षक - एफ्. सी. पीयर्स।
5. विराट स्वर का विधायक - पन्नालाल घोष।
6. व्यवहार कुशल और संवेदनशील पंडित - अनंत सदाशिव अल्टेकर।

7. किशोर जीवन की मुस्कान ही जिसकी साधना थी - श्रीराम बाजपेयी।
8. एक जन्मजात चक्रवर्ती - सच्चिदानंद सिन्हा।
9. द्रष्टा, कर्ता और कवि - सुधींद्रनाथ दत्त।
10. मेरे पिता - लक्ष्मीनारायण माथुर।

'जिन्होंने जीना जाना' में कुल मिलाकर बारह व्यक्तियों का चरित्र-चित्रण किया है -

1. हिंदी साहित्य के चिरकुमार - रामवृक्ष बेनिपुरी।
2. अमृत के स्रोत - पंडित जवाहरलाल नेहरू।
3. सदा बहार साया - मामा वरेरकर।
4. कुछ तरूण स्मृतियाँ - सुमित्रानंदन पंत।
5. ग्रामीण ह्दयों के सम्राट - राजेंद्र प्रसाद।
6. प्रज्ञा के शिल्प विराट के दर्शक - वासुदेव शरण अग्रवाल।
7. निराले आश्रयदाता - बनारसीदास चतुर्वेदी।
8. तपस्वी साहित्यकार - शिवपूजन सहाय।
9. पंडित और सूत्रधार - वेंकट राघवन।
10. जो झंकार की पगडंड़ियाँ छोड़ गए हैं - राधिका रमण प्रसादसिंह।
11. भरतमुनि की परंपरा में ग्रामीण कलाकार - भिखारी ठाकुर।
12. जादू की कली - देविका रानी।

निष्कर्ष -

उपर्युक्त विवेचन से कहा जाता है कि माथुर के साहित्य पर उनका परिवार, उनकी मित्र मंडळी तथा तत्कालीन, सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक परस्थितियों का विशेष प्रभाव पड़ा है। उनके एकांकी और नाटकों पर यह प्रभाव अधिक दिखाई देता है। ये एकांकी और नाटक हिंदी साहित्य की अक्षय तथा अमूल्य निधि हैं।

माथुर के साहित्य पर उनके व्यक्तित्व का भी काफी प्रभाव दिखाई देता है। इसीलिए उन्हें अफसरी साहित्यकार कहा जाता है।

माथुर की साहित्य सृष्टि संख्या की दृष्टी से कम है लेकिन मूल्यांकन की दृष्टि से संपन्न है।

संदर्भ सूची

1. जगदीशचंद्र माथुर, बोलते क्षण, पृ. 21
2. गोविंद चातक, नाटककार जगदीशचंद्र माथुर, पृ. 11
3. जगदीशचंद्र माथुर, जिन्होंने जीना जाना, पृ. 42